AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

भारतीय राजनीति और चुनाव सुधारः एक समीक्षा

ORIGINAL ARTICLE

Authors
अनिल कुमार यादव
शोधार्थी

डॉ. रीता कुमारी
सह प्राध्यापिका (से. नि.)
विश्वविद्यालय राजनीति विज्ञान विभाग,
विनोबा भावे विश्वविद्यालय
हजारीबाग, झारखण्ड, भारत

शोध सार

सन् 2013 के अंत में संपन्न दिल्ली विधानसभा के चुनावों के समय अस्तित्व में आयी 'आम आदमी पार्टी' के कर्णधार बरसों से चुनाव सुधार की वात करते आ रहे हैं और 2013 के विधानसभा चुनावों में श्री अरविंद केजरीवाल ने वह कर दिखाया जिसकी कल्पना तक करना कठिन था। अरविंद केजरीवाल ने अपेक्षाकृत साफ छवि के लोगों को टिकट दिया और निर्धारित चुनावी खर्च की सीमा में रहकर चुनाव जीत कर दिखाया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी पार्टी (आप) को मिले चन्दे और चन्दा देने वालों के नाम सार्वजनिक कर विभिन्न राजनीतिक दलों को आइना दिखा दिया। अरविंद केजरीवाल और उनकी आम आदमी पार्टी ने उस मिथ को तोड़ दिया कि बिना काले धन और बिना बाहुबल के न चुनाव लड़ा जा सकता है और न चुनाव जीता जा सकता है। उन्होंने दिल्ली विधानसभा चुनावों में शानदार सफलता हासिल करके सिद्ध कर दिया कि यदि राजनीतिक इच्छाशक्ति हो तो प्रदूषित चुनाव प्रक्रिया को सुधारा जा सकता है। हाल के दिनों में चुनाव प्रक्रिया में सुधार की दृष्टि से कई काम हुए हैं। सन् 2013 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कह दिया कि सजा प्राप्त व्यक्ति चुनाव नहीं लड़ सकता। सर्वोच्च न्यायालय के ऐसा कहते ही सभी राजनीतिक दलों में हड़कंप मच गया, क्योंकि कमोबेश सभी राजनीतिक दल अपराधियों और सजायाफ्ताओं से भरे पड़े हैं। तुरंत–फुरंत सर्वोच्च न्यायालय के आदेश को पलटने के लिए सरकार एक अध्यादेश लाने की तैयारी में जुट गई। कांग्रेस महासचिव राहुल गांधी ने इस अध्यादेश को मीडिया के सामने फाड़ कर चुनाव सुधार पर बहस को और तेज कर दिया। इसी समय माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक और महत्वपूर्ण आदेश देते हुए कहा कि मतदाता को नकारात्मक (निगेटिव) मतदान का भी अधिकार है इसलिए इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन में सबसे आखिर में एक और विकल्प होगा उपरोक्त में से कोई नहीं (None of the above/NOTA). और राजसेवी अन्ना हजारे सहित अनेक समाजसेवी काफी पहले से ही इस नकारात्मक मतदान अधिकार की मांग करते रहे हैं। सर्वोच्च न्यायालय की पहल के बाद सन् 2019 के अंत में संपन्न दिल्ली विधानसभा के चुनावों में चुनाव आयोग ने मतदाताओं को यह नकारात्मक अधिकार/विकल्प भी उपलब्ध करा दिया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों का असर यह हुआ कि उत्तर प्रदेश के वरिष्ठ राजनेता रशीद मसूद को अपनी राज्यसभा सदस्यता खोनी पड़ी। इसके तुरंत बाद चारा घोटाले में सजा प्राप्त लालू प्रसाद यादव को भी अपनी लोकसमा सदस्यता गंवानी पड़ी। इस प्रकार चुनाव प्रक्रिया में सुधार की बयार वहने लगी है। इसकी गति मंदी जरूर है लेकिन इससे उम्मीदें बहुत हैं आम जनता को।

मुख्य शब्द

चुनाव आयोग, चुनाव सुधार, आम आदमी पार्टी, नाकारात्मक मतदान, अध्यादेश.

भूमिका

किसी चुनाव की सफलता दो आधार पर मापी जाती है, पहला हिंसा की घटनाओं का न होना और डाले गए वोटों का प्रतिशत लेकिन इन दोनों बातों के संदर्भ में कागजी और जमीनी हालत में काफी फर्क होता है। इस फर्क को समझे बगैर चुनाव की सफलता–असफलता की बाबत् किसी भी तरह की राय कायम करना ठीक नहीं है। जमीनी हालत यह है कि देश के कई स्थानों पर चुनाव अधिकारियों को ग्रामीण क्षेत्र में दबंग लोग आवभगत करके या धमका कर रखते हैं। यह कोई नई शुरुआत नहीं है बल्कि यह लंबे समय से चल रहा है। इन अधिकारियों को उनके बाल–बच्चों का वास्ता देकर स्थानीय स्तर पर धांधली में सहयोग करने को मजबूर किया जाता रहा है। ऐसा होने पर चुनाव आयोग की नजर में तो चुनाव शांतिपूर्ण हुआ, लेकिन लोकतंत्र की तो हत्या हो गई। इसके बावजूद दिल्ली में बैठे लोगों को लगता है कि चुनाव तो शांतिपूर्ण हुए यानी बहुत अच्छे से हुए।

कहा जा सकता है कि जहाँ ऐसा हो रहा है वहाँ की जनता अक्षम प्रशासन की जकड़न में है, या फिर वहाँ की जनता पर अराजकतावादी समूहों की जकड़न है। इसमें एक बात जो साफ तौर पर महसूस होती है कि अक्षम प्रशासन और अराजकतावादी समूहों के बीच अलिखित समझौता है, जो लोकतंत्र की जड़ें खोद रहा है। वर्तमान चुनाव प्रणाली के आधार पर जो सरकारें बनती हैं, वे इन विकृतियों को दूर करने की बजाए इन्हें और मजबूत करती हैं। चूंकि सभी प्रमुख राजनीतिक दल चुनाव प्रणाली के इस दोष से कहीं न कहीं लाभान्वित होते हैं, इसलिए इसके खिलाफ आवाज उठाने में उन्हें कोई विशेष रुचि नहीं है। यह काम तो उन जनसंगठनों को ही करना पड़ेगा जो चुनावी राजनीति के तात्कालिक नफे–नुकसान की चिंता किए बिना जन अभिव्यक्ति को सटीक और सार्थक बनाना चाहते हैं। चुनाव सुधार की बात करते हुए सबसे पहले तो हमें इलैक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन से होने वाले कदाचार की संभावनाओं को समाप्त करने की माँग करनी चाहिए। जैसा कि हम सब जानते हैं कि हर विधानसभा क्षेत्र में कुछ अतिरिक्त वोटिंग मशीन रखी जाती हैं, उनके उपयोग–दुरुपयोग के बारे में भी सोचा जाना चाहिए। कुछ ऐसे मामलों की जानकारी मिली है, जहां इन इलैक्ट्रॉनिक मशीनों का दुरुपयोग हुआ है। संबंधित सरकारी अधिकारियों को मिलाकर एक खास उम्मीदवार के पक्ष में इन मशीनों से मतदान करवाने की बात भी अनुभव में आई है।

चुनाव में कदाचार को राष्ट्रद्रोह के समक्ष अपराध माना जाना चाहिए। अगर ऐसा हो जाए तो कदाचार पर काफी हद तक लगाम लगायी जा सकती है। इसके अलावा चुनाव आयोग को अधिकार संपन्न बनाते हुए कुछ निश्चित कानून के तहत उम्मीदवारी और दलों की मान्यता खारिज करने का अधिकार प्रदान किया जाए। ऐसा होने पर सियासी दलों के अंदर एक तरह का वैधानिक भय पैदा होगा, जिसकी वजह से वे अपना व्यवहार मर्यादित रख सकेंगे।

चुनावों में निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए राज्य स्तर के अधिकारी उस राज्य में नहीं लगाए जाएं। ऐसा होने पर धांधली की संभावना पर एक हद तक विराम लगाया जा सकता है। यह काम व्यावहारिक तौर पर भी असंभव नहीं लगता इसलिए चुनाव को अच्छी तरह से संपन्न कराने के लिए यह प्रयोग तो किया ही जाना चाहिए। चुनाव सुधार की जरूरत इसलिए भी महसूस होती है कि हाल के अनुभवों से इस बात की पुष्टि हो चुकी है कि लोकतंत्र अब निगमतंत्र में बदल कर रह गया है। इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण संप्रग सरकार के विश्वास मत प्राप्त करने के दौरान लोकतांत्रिक आस्था के केन्द्र संसद में देखने को मिला। सारी दुनिया ने उस शर्मनाक घटना को देखा कि सरकार बचाने के लिए; विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने का दंभ भरने वाले देश में सांसदों को खरीदने की कोशिश हुयी। इस घटना से कई गंभीर संकेत उभरकर सामने आए हैं। पहली बात तो यह कि जो वोट के बदले नोट नहीं चाहते थे उन्होंने तो सबके सामने यह पोल खोल दी, पर यह अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं है कि जब इतने बड़े स्तर पर नोट से वोट और वोट से नोट का खेल चल रहा है तो अंदर ही अंदर कई लोगों ने इस खेल

में हिस्सा लिया होगा और अपना स्वार्थ साधा होगा। इस बात की पुष्टि उस वक्त भी हो गई थी जब कई सांसदों ने विश्वास मत के दौरान पाला बदलकर मतदान किया था और कई तो मतदान से गायब ही हो गए थे। यह लोकतंत्र के निगमीकरण का सार्वजनिक प्रदर्शन था।

बहरहाल, इन अनुभयों से जो बात निकलकर सामने आ रही है वो यह है कि बड़े दलों और गठबंधनों को निगमों ने निगल लिया है। निगमतंत्र के भारतीय राजनीति पर बढ़ते प्रभाव के लिए कुछ घटनाओं का उल्लेख करना आवश्यक है। कुछ साल पहले देश के बड़े उद्योगपति ने अपने एक चहेते को ऊर्जा मंत्रालय दिए जाने की मांग की थी। ऐसा उन्होंने इसलिए कहा था कि उनके मनमाफिक मंत्री बनने के बाद उनके व्यावसायिक हितों को साधना आसान हो जाता। गुजरात सरकार में उद्योगपतियों को जबरदस्त तरीके से प्रोत्साहन दिया गया। यहां तो बड़े प्रोजेक्टस और इंफ्रास्ट्रक्चर के विकास की आड़ में थैलीशाहों को लाभ पहुंचाया जा रहा है। कर्नाटक में तो हद ही हो गई बताया जा रहा है कि पिछले विधानसभा चुनाव में वहाँ के हर विधानसभा क्षेत्र में कार, मोटरसाइकल, रंगीन टी.वी. समेत नकद रुपए भी बांटे गए।

आज सत्ताधारी दलों में चुनावों के दौरान जमकर सरकारी धन के दुरुपयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है। सरकारी विज्ञापन, होर्डिंग्स और अन्य तरीके से सत्तारूढ़ दल अधिसूचना जारी होने से पहले तक सरकारी खर्च पर अपना विज्ञापन करता है। ज्यादातर सरकारें बजट का एक बड़ा हिस्सा विज्ञापन पर ही खर्च करती हैं।

चुनाव के दौरान जो विज्ञापन दिए जाते हैं, वे काफी महंगे होते हैं, लेकिन चुनाव आयोग को कम खर्च का फर्जी बिल बनाकर थमा दिया जाता है और शक्तिहीन चुनाव आयोग के पास ऐसे सियासी दलों के खिलाफ आवश्यक कदम उठाने का कोई अधिकार ही नहीं होता।

चुनाव के दौरान सत्तारूढ़ दल द्वारा पूरे चुनाव को कई तरह से प्रभावित किया जाता है। सत्ता में बैठे लोग अपनी सुविधा के मुताबिक पक्षपातपूर्ण तरीके से रिटर्निंग अफसरों की नियुक्ति करते हैं। ऐसे में इन अफसरों के लिए अपने कार्य को निष्पक्षता से अंजाम दे पाना बेहद मुश्किल हो जाता है। सत्तारूढ़ दल हर कीमत पर चुनाव में अपनी जीत सुनिश्चित करने के लिए अपराधियों को इस मौके पर जेल से छुड़वाने और उन्हें जिलाबदर नहीं करवाने में अहम भूमिका निभाते हैं। सत्तारूढ़ दल के इशारे पर शराब बांटना, थाना कार्रवाई नहीं करना, विपक्षी कार्यकर्ताओं को झूठे मुकदमे बनाकर उन्हें जेल में डालना और उनके पुराने मुकदमे खोलना जैसी प्रवृत्तियां काफी तेजी से बढ़ रही हैं।

चुनाव सुधार की बात जब हम करते हैं तो सबसे पहले चुनाव प्रक्रिया में व्यापक सुधार की बात उठानी होगी। इसमें पहली बात तो यह है कि बूथ के हिसाब से वोटों की गिनती नहीं हो, क्योंकि ऐसा अनुभव आया है कि कई स्थानों पर दबंग प्रत्याशी और उनके गुर्गे गांव के लोगों को यह कहकर डराते–धमकाते हैं कि गिनती के दौरान हमें पता चल जाएगा कि इस यूथ से कितना वोट मिला है और अगर हमें वोट नहीं दिया तो इसका अंजाम ठीक नहीं होगा। इसका परिणाम यह होता है कि इन गुंडों से दुश्मनी मोल नहीं लेने की इच्छा से लोग डरकर, न चाहते हुए भी उनके पसंदीदा प्रत्याशी को वोट देने के लिए मजबूर हो जाते हैं। चुनाव व्यवस्था को चाक–चौबंद करने के लिए कुछ नए तरीके भी अपनाए जाने चाहिए। चुनाव व्यवस्था में लोगों का भरोसा कायम रखने के लिए मोबाइल बूथ की भी व्यवस्था होनी होनी चाहिए। पोस्टर से लेकर पूरे विज्ञापन अभियान का खर्च ठीक से तय हो ताकि मुकाबला संसाधनों के बीच न होकर मुद्दों और मूल्यों के बीच हो।

चुनाव आयोग द्वारा पुराने और बड़े दलों तथा उनके प्रत्याशियों को अतिरिक्त महत्व दिया जाता है। यह भेदभाव बंद होना चाहिए उदाहरण के लिए टीवी और दूसरे प्रचार साधनों पर चुनाव प्रचार के लिए बड़े दल के प्रत्याशी को अधिक समय दिया जाता है जबकि छोटे दल के प्रत्याशी को अपेक्षाकृत कम समय मिलता है। इसके अलावा यह भेदभाव और भी कई स्तर पर है। चुनाव चिन्ह के आबंटन में भी नई पार्टियों को भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। चुनाव संचालन की योजना बनाते समय बड़े दल के प्रत्याशियों को तो आयोग विचार–विमर्श के लिए बुलाता है, जबकि छोटे दल या निर्दलीय प्रत्याशियों को इन मामलों से आयोग दूर ही रखता है।

चुनाव के दौरान बोगस वोटिंग की घटना भी आमतौर पर हर जगह चलन में है। कई स्थानों पर तो प्रत्याशी बड़े ही सुनियोजित तरीके से इस कार्य को अंजाम देते हैं। चुनाव आयोग को यह अधिकार मिलना चाहिए कि बोगस वोटिंग करवाने में संलिप्त प्रत्याशी को अयोग्य करार देते हुए उसके चुनाव लड़ने पर आजीवन प्रतिबंध लगा दिया जाए। चुनाव लड़ने वालों के लिए घोषणा पत्र बंधनकारी होना चाहिए साथ ही आयोग यह सुनिश्चित करे कि अगर कोई उम्मीदवार अपने घोषणापत्र में गलत जानकारी दे तो उसे चुनाव लड़ने से रोक दिया जाए। चुनाव सुधार के तहत ही यह भी सुनिश्चित किया जाए कि अपराधी चुनाव नहीं लड़ सकें। बीते कुछ सालों से राजनीति का अपराधीकरण काफी तेजी से बढ़ा है। इस वजह से सही सोच और समझ के साथ काम करने की क्षमता से लैस सज्जनशक्ति राजनीति से दूर होती जा रही है। इसे रोकना इसलिए भी जरूरी है कि सज्जनशक्ति के राजनीति में नहीं होने की वजह से राजनीति के अमीरपरस्त और विदेशपरस्त होने की गति निरंतर बढ़ती ही जाएगी।

चुनाव के बाद या उस दौरान जो विवाद उत्पन्न हो जाते हैं, उनके न्यायिक निपटान की बेहतर व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसे सभी मामलों को छह माह के अंदर हर हाल में निपटाना जरूरी होना चाहिए तभी चुनाव की प्रक्रिया सही मायने में निष्पक्ष और जन अपेक्षाओं के अनुरूप हो पाएगी। मतदाता रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया में व्याप्त खामियों को भी दूर किए जाने की जरूरत है। इसमें कई तरह से फर्जीवाड़ा हो रहा है। हद तो तब हो जाती है जब मतदाता पहचान पत्र बनने के बाद उसे कूड़े के ढेर में पाया जाता है ऐसा इसलिए किया जाता है कि दुबारा पहचान पत्र बनाने के लिए फिर पैसा वसूला जा सके। गुम हुए मतदाता पहचान पत्रों के दुरुपयोग का खतरा भी बना रहता है। बदहाली का आलम तो यह है कि मतदाता सूची में थोक में नाम जोड़े और घटाए जाते हैं। यह कार्य किसी खास पक्ष को फायदा पहुंचाने के मकसद से किया जाता है।

चुनाव सुधार की बात करते हुए हमें इस बात का भी ख्याल रखना होगा कि फर्जी राजनीतिक दलों की मान्यता रद्द की जाए। अभी चार सौ से ज्यादा राजनैतिक दल ऐसे हैं जो चुनावं ही नहीं लड़ते। चुनाव लड़ने वाले दलों में से भी कई ऐसे हैं जो अन्य कारणों से चुनाव लड़ते हैं। इनका मकसद खुद को और किसी खास पक्ष को लाभ पहुंचाना होता है। आज जरूरत इस बात की है कि दलों की मान्यता के पैमाने पर फिर से विचार किया जाए साथ ही दलों की आर्थिक व्यवस्था की निगरानी के लिए भी बेहतर बंदोबस्त किया जाए।

कुछ समय पूर्व चुनाव आयोग में जो विवाद पैदा हुआ उसने भी आयोग की निष्पक्षता पर सवाल खड़ा किया है। इस विवाद में यह बात तो प्रमाणित हो गई कि चुनाव आयुक्त नवीन चावला ने अपनी संस्था (एन.जी.ओ.) के लिए विधायकों और सांसदों की विकास निधि से पैसा लिया। ऐसा सामने आ जाने पर इतना तो तय हो जाना चाहिए था कि उन्हें मुख्य चुनाव आयुक्त नहीं बनाया जाए पर सियासी लाभ लेने की चाह में ऐसा नहीं किया गया। जब चुनाव आयोग को अधिकार संपन्न बनाने की बात चलती है तो इसके साथ–साथ यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि आयोग से सेवानिवृत्त होने पर चुनाव आयुक्त कोई राजनीतिक पद नहीं ग्रहण कर सकें या किसी राजनीतिक दल के प्रत्याशी के तौर पर चुनाव नहीं लड़ सकें।

निष्कर्ष

जाहिर है जब चुनावी खर्च, सरकार और उसके बहाने आम लोगों पर चुनावी वादों के बोझ, राजनीति के अपराधीकरण, जाति–मजहब के इस्तेमाल, उनके सांगठनिक काम में पारदर्शिता जैसे कई सारे मुद्दे एक साथ आ गये हैं, तो ये चुनाव सुधार की जरूरत को स्थापित करते हैं। एक स्तर पर यह बात बहुत अच्छी लगती है कि सभी पक्षों पर सबका ध्यान है। यह शायद उससे भी अच्छी बात है कि सिविल सोसाइटी (जिसके लोगों ने हाल के ज्यादातर फैसलों से जुड़े मामलों को कोर्ट के सामने लाया), न्यायपालिका व मीडिया अपनी लोकतांत्रिक व्यवस्था की गड़बड़ियों और बीमारियों को जानती है और सतर्क है। इन्हीं लोगों ने कालेधन, अपराध, जाति–धर्म जैसी बुराइयों से संसद और विधानसभाओं ही नहीं, लोकतांत्रिक सरकारों के कामकाज और स्वरूप के बिगड़ने का शोर भी मचाया है। पर यह कहने में हर्ज नहीं कि जब तक राजनेता, राजनीतिक दल और सीधे मतदाता पहल नहीं करेगा, तब तक ज्यादा कुछ नहीं होनेवाला है। यही मुख्य खिलाड़ी है और अगर इन्होंने खेल बिगाड़ा है तो यही

खेल सुधारने की असली ताकत भी रखते हैं। चुनाव सुधार को अदालतों, चुनाव आयोग, सूचना अधिकार कानून और मीडिया के सहारे अन्तिम नतीजे तक नहीं पहुंचाया जा सकता।

एक बड़ा उदाहरण बिहार का है, जहाँ नीतीश कुमार ने कोई बहुत दावा नहीं किया, शोर नहीं मचाया, पर अपराधियों के मुकदमों की पैरवी के समय सरकारी पक्ष की तरफ से ढील न देने की नीति चलायी और बिहार का फर्क हर किसी ने महसूस किया—भले अब पहले जैसी तेजी नहीं दिख रही है। उत्तर प्रदेश में भी मायावती राज में हल्का फर्क दिखा, क्योंकि उन्होंने खुली पक्षधरता से बचने का प्रयास किया। दूसरी ओर यह तथ्य भी है कि सिविल सोसाइटी, चुनाव आयोग और अदालतों की सक्रियता के बावजूद आज तक सिर्फ एक विधायक गलत चुनावी तरीके अपनाने (पेड न्यूज की सेवा लेने) का दोषी करार दिया गया है। आज लगभग हर सांसद अपने चुनाव खर्च का ब्योरा गलत देता है, लेकिन सारे कानून, सारी सक्रियता कुछ नहीं बिगाड़ पाते। यह सही है कि टी.एन. शेषन के समय से चुनाव आयोग की सक्रियता ने चुनाव पर बहुत असर डाला है, लेकिन उससे बड़ा सच यह है कि तब से चुनाव पर होने वाले खर्च में बेतहाशा वृद्धि हुई है, अपराधियों का संसद और विधानसभा तक पहुंचना बढ़ गया है।

संदर्भ सूची

1. सेठी, के. के. (2012) ''संघवाद तथा भाषा नीति'' *लोक प्रकाशन* (संघवाद विशेषांक), वर्ष 4, अंक 2, पृ. 173।
2. सिंह, अजय कुमार (2003) *फेडरलिज्म एण्ड स्टेट फॉरमेशन,* बी. डी. दुआ एवं एम. पी. सिंह (सं.) इंडियन फेडरलिज्म इन द न्यू, मिलेनियम, नई दिल्ली, मनोहर, पृ. 92—93।
3. मजीद, अख्तर (2003) *इंडियन फेडरल स्ट्रक्चरः सम इनबिल्ट स्ट्रेन्स,* बी. डी. दुआ एवं एम. पी. सिंह (सं.) इंडियन फेडरलिज्म इन द न्यू, मिलेनियम, नई दिल्ली, मनोहर, पृ. 82।
4. सिंह, एम. पी. एवं सक्सेना, रेखा (2008) *इंडियन पॉलिटिक्सः कन्टेम्परारी इशूज् एण्ड कन्सर्नस,* नई दिल्ली, प्रेन्टिस हॉल ऑफ इंडिया, पृ. 156—159.
5. डगलस वी. वरनी, (2003) ''फ्राम क्वेसी—फेडरेशन टू क्वेसी कॉन्फेडेरेसी? द ट्रॉन्सफॉरमेशन ऑफ इंडियाज पार्टी सिस्टम'', *द जर्नल ऑफ फेडरलिज्म,* फॉल, पृ. 153—171.

——==00==——